Chapter-7

: सप्तम अध्याय :

:: उपसंहार ::

: सप्तम अध्याय :

:: उपसंहार ::

कवि या लेखक द्वारा रचित यह दूसरा संसार, यह समानांतर संसार, कितना अदभुत, कितना विचित्र, कितना आनंददायक है कि उसकी अनुभूति तो काव्यमीमांसाकार राजशेखर द्वारा कथित कोई 'तत्वाभिनिवेशी' भावक ही कर सकता है। कवि या लेखक इस संसार रुपी उदधि में गोते लगाकर, उसमें गहरे तक जाकर, इस रत्नाकर से जो मोती चुराकर लाते हैं, उन मोतियों की माला पिरोने के लिए भी, भावक को भी, सहृदय को भी कवि या लेखक की इस दुनिया के महासागर में गोते तो लगाने ही पड़ेंगे। गहरे पानी में पैठे बिना यह संभव कहां है?

यह लिखना इसलिए कि शोध-प्रबंध का कार्य भी साहित्य-सागर में गोते लगाने जैसा ही है। वैसे लोगों को कहते सुना है, और मेरे लिए भी या सही था कि अपने निजानंद के लिए काव्य या साहित्य पढ़ना एक बात है और शोध के लिए। अनुसंधान के लिए उसे पढ़ना दूसरी बात है, क्योंकि जायस कैरी के मतानुसार यह शोध-अनुशंधान का कार्य थोड़ा शुष्क या नीरस-सा प्रतीत होता है। परंतु यह ध्यानार्ह रहे कि उक्त वाक्य में मैंने 'था' का प्रयोग किया है। अभिप्राय यह कि शुरू-शुरू में मुझे भी यह शुष्क या नीरस लगा था, परंतु जैसे-जैसे मैं इस महार्णव में उतरती गई एक अनोखा आनंद, रचनात्मक जैसा ही आनंद, मुझे प्राप्त होता गया, और अंग्रेजी में जिसे 'Job Satisfaction' कहते हैं, उसका अनूठा अदभूत शोध-रस मुझे आनंद-विभोर करता रहा।

'काव्य शास्त्र विनोदेन कालोगच्छति धिमताम' – बिलकुल सही कहा गया है। कविगुरु रवीन्द्रनाथ टैगोर के मतानुसार जिसने काव्य और शास्त्र दोनों को पढ़ा है उसका भाग्य तो सर्वोपरि है,

जिसने केवल काव्य पढ़ा है शास्त्र नहीं उसका भाग्य द्वितीय कोटिका है, किन्तु जिसने केवल शास्त्र पढ़ा है काव्य नहीं उसका भाग्य तो मंदातिमंद माना जाएगा। यह मेरा सदभाग्य रहा कि मुझे विश्वविद्यालयीन शिक्षा के स्तर पर प्रोफ़ेसर पारूकान्त देसाई साहब जैसे 'गुरु-शिक्षक' मिले। वे पढ़ाते समय काव्य या साहित्य के अतिरिक्त साहित्येतर अनेक विधाओं की बात करते थे, जिनमें इतिहास, पुरातत्व, समाजशास्त्र, मनोविज्ञान, नृवंशशास्त्र, पुराण (Mythology) आदि कई विषयों की चर्चा रहती और फ़लतः 'व्याकरण' या 'भाषाविज्ञान' जैसे, दूसरों की दृष्टि में नीरस विषय भी रस-सिक्त हो उठते थे।

शोध के लिए मैंने अपनी पसंदगी का कलश पौराणिक उपन्यासों पर उतारा उसकी मनोभूमि वहां से तैयार हो रही थी। उपन्यास-सम्राट मुंशी प्रेमचंद ने कहा है कि उपन्यास एक ऐसी विधा है कि यदि आपमें कथा कहने की प्रतिभा है, और आप किसी भी विधा के पंड़ित हैं, तो अपने उस विषय को आप बाकायदा ले आ सकते हो और उसमें अपनी कथा कह सकते हैं। अंग्रेजी में तो 'Science Fiction' जैसी विधा भी विकसित हुई है और ऐसे अनेक उपन्यास आए हैं जिनमें उपन्यासकारों ने अपनी कल्पना और मेधा के वातायन से उन चीजों को देख लिया था जो आज के वैज्ञानिक और वैज्ञानिक अनुसंधान दिखा रहे हैं। मुंशी प्रेमचंद का उक्त कथन हिन्दी के उपन्यासकारों और कथाकारों के लिए भी था कि उन्हें अधिक उदार होते हुए साहित्य में नये विश्वों और क्षितिजों को तलाशना होगा और साहित्य को बहुआयामी बनाना होगा, तभी तो उनके ही युग में सर्वश्री वृन्दावनलाल वर्मा तथा आचार्य चतुरसेन शास्त्री जैसे उपन्यासकार आये जिन्होंने ऐतिहासिक उपन्यासों के क्षेत्र में अपना अमूल्य योगदान दिया; तभी तो जैनेन्द्र, इलाचन्द्र जोशी तथा अज्ञेय आये।

प्रेमचंद जितने बड़े साहित्यकार थे, रचनात्मक साहित्यकार, उतने ही बड़े समीक्षक भी थे। बड़ा समीक्षक उसे कहते हैं जो साहित्य में नये-नये रास्तों की तलाश करता है, नये प्रवाहों को

प्रोत्साहित करता है। 'हंस' और 'जागरण' के संपादकीय, 'कुछ विचार' तथा कुछेक अन्य लेखों-निबंधों में प्रेमचंद के इस कम आकलित रूप को देखा जा सकता है। यह अचानक नहीं है कि प्रेमचंद के बाद हिन्दी का कथा-साहित्य बहुआयामी होता गया है।

परंतु इसे भी एक दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति ही कहना चाहिए कि प्रेमचंद के बाद ऐसा देखनेवाली दृष्टि कुछ-कुछ संकुचित होती गयी कि नये औपन्यासिक रूपबंधों पर आलोचकों का, अतएव लेखकों का भी, ध्यान बहुत कम गया है। 'पौराणिक उपन्यास' भी एक ऐसा ही रूपबंध है। हिन्दी के प्रायः औपन्यासिक आलोचकों ने इस रूपबंध की उपेक्षा की है। इतना ही नहीं, कई आलोचकों ने तो इस रूपबंध को 'ऐतिहासिकता की कोटि' में डाल दिया है, हालांकि 'इतिहास' और 'पुराण' ये दोनों अलग-अलग हैं, उनमें निहित दृष्टियां अलग-अलग-हैं, उनके लक्ष्य अलग-अलग है।

जितना शोध-कार्य सामाजिक, मनोवैज्ञानिक, आंचलिक आदि उपन्यासों पर हुआ है; उतना शोध-कार्य ऐतिहासिक उपन्यासों पर नहीं हुआ है, और पौराणिक उपन्यासों पर तो नहींवत् हुआ है। 'पौराणिक उपन्यासः समीक्षात्मक अध्ययन' नामक पुस्तिका में आलोचक-त्रय – हितेन्द्र यादव, कविता सुरभि और सुनीता सक्सेना— ने डॉ. नरेन्द्र कोहली के तीन उपन्यासों का समीक्षात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है। ये तीन उपन्यास हैं – 'तोड़ो कारा तोड़ो', 'प्रच्छन्न' और 'अभिज्ञान'। इनमें से 'तोड़ो कारा तोड़ो' तो स्वामी विवेकानंद के जीवन पर आधृत है, अतः उसे 'पौराणिक उपन्यास' कहना अनुपयुक्त होगा। स्वामी विवेकानंद पर जीवनीमूलक उपन्यास होने के कारण उसमें वेद, उपनिषद और पुराणों के संदर्भ उपलब्ध होते हैं, पर उतने मात्र से इसे 'पौराणिक उपन्यास' नहीं कहा जा सकता। दूसरे उपर्युक्त किताब में डॉ. कोहली के तीन उपन्यासों का अध्ययन प्रस्तुत है, पर 'पौराणिक उपन्यास' के व्यावर्तक लक्षणों की चर्चा यहां बिलकुल नहीं हुई है, जो अपेक्षित थी।

'हिन्दी उपन्यासः एक अन्तर्यात्रा' (डॉ. रामदरश मिश्र), 'हिन्दी उपन्यास साहित्य का अध्ययन' (डॉ. एस. एन. गणेशन)

आदि में कुछेक पौराणिक उपन्यासों की चर्चा ऐतिहासिक उपन्यासों की कोटि में हुई है। डॉ. त्रिभुवनसिंह ने अपने आलोचनात्मक ग्रन्थ—'हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद'—को 'अप-डेटेड' करते हुए उपन्यासों के पौराणिक धरातल की कुछ चर्चा अवश्य की है। 'हिन्दी उपन्यास का इतिहास' (गोपालराय) में भी पौराणिक उपन्यासों की विशेष चर्चा नहीं हुई हैं और तो और लेकिन 'सूतो वा सूतपुत्रो वा' जैसा सशक्त, दमदार और विचारोत्तेजक उपन्यास के लेखक डॉ. बच्चनसिंह के दोनों ग्रन्थ—'हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास 'तथा' उपन्यास का काव्यशास्त्र ' में भी कहीं दूर-दराज तक किसी पौराणिक उपन्यासकार या पौराणिक उपन्यास का जिक्र तक नहीं है। संपादक-त्रय -- डॉ. भीष्म साहनी, डॉ. रामजी मिश्र तथा डॉ. भगवतीप्रसाद निदारिया – के 'आधुनिक हिन्दी उपन्यास' में कम से कम डॉ. नरेन्द्र कोहली के उपन्यास 'दीक्षा' की समालोचना (डॉ. विजयेन्द्र स्नातक द्वारा) तथा स्वयं डॉ. कोहली की कैफियत 'दीक्षा' की 'सृजन-यात्रा' प्रकाशित है; किन्तु इधर डॉ. नामवरसिंह द्वारा संपादित 'आधुनिक हिन्दी उपन्यास' (खण्ड-2) में एक भी पौराणिक उपन्यास की चर्चा नहीं हुई है, जबकि कभी 'अपने अपने राम' (डॉ. भगवानसिंह) की भूरि-भूरि प्रशंसा स्वयं नामवरजी कर चुके हैं।

अभिप्राय यह कि 'पौराणिक उपन्यास' की सर्वाधिक उपेक्षा हुई है। यद्यपि पौराणिक उपन्यास संख्या में कम लिखे गए हैं, पर जितने लिखे गए हैं, उनकी चर्चा तो होनी ही चाहिए थी, जो नहीं हुई है। इधर 'नारी-विमर्श' और 'दलित-विमर्श' पर भी काफी शोध-कार्य और गोष्ठियां आयोजित हो रही हैं। पौराणिक उपन्यासों में इन दोनों विमर्शों पर काफी चर्चा मिल रही है, पर शोध-कर्ताओं और आलोचकों का ध्यान इधर कम ही गया है।

प्रस्तुत शोध-प्रबंध इस कमी को पूरा करने का एक नम्र प्रयास है। साम्प्रतिक यथार्थ, उसकी समस्याओं को देखने-परखने का एक रास्ता यह भी हो सकता है। पुराणों या पुराकथाओं पर नये ढंग से विचार-विमर्श हो सकता है। यह उसी दिशा में उठाया गया एक कदम है।

शोध-विषय का सम्बन्ध उपन्यास विधा से है, अतः प्रथम-अध्याय – 'विषय-प्रवेश' – में उपन्यास की यथार्थधर्मिता पर प्रकाश डालने की चेष्टा की गई है। उपन्यास में यथार्थता वस्तु-पात्र, परिवेश, भाषा आदि के जरिये आती है। अर्थात् उपन्यास के सभी तत्वों एवं घटकों में यथार्थता का निर्वाह किया जाता है। यहां हमने उपन्यास के विकास को चिह्नित करते हुए विभिन्न काल-खण्डों में पौराणिक उपन्यास कहां-कहां आए है यही निर्दिष्ट नहीं किया, बल्कि यह भी बताया है के उपन्यास की वस्तु, परिवेश, पात्र आदि के यथार्थ निरूपण के लिए पौराणिक उपन्यासकारों ने क्या किया है। पौराणिक उपन्यासों का प्रस्थान बिन्दु हमें प्रेमचन्दोत्तर काल में उपलब्ध होता है। वैसे तो आचार्य चतुरसेन शास्त्री अपने 'इतिहास-रस' के ऐतिहासिक उपन्यासों कि लिए विख्यात हैं, किन्तु उन्होंने एक पौराणिक उपन्यास भी दिया है – 'वयं रक्षामः'। इसके लिए एकमेवोद्वितीयम् विशेषण का प्रयोग कर सकते हैं। यद्यपि हिन्दी के अधिकांश आलोचकों ने इस उपन्यास को ऐतिहासिकता के खाते में डाल दिया है, जबकि यह उपन्यास पौराणिक उपन्यास की कोटि में आता है। हिन्दी की चली आती हुई परंपरा के विपरीत शास्त्रीजी ने प्रस्तुत उपन्यास में रावण को नायक बनाया है, परन्तु जहां अधिकांश लेखकों वा कवियों ने राम को नायक बनाने के लिए रावण के व्यक्तित्व को छोटा करके बताया है, वहां शास्त्रीजी ने रावण को नायक रूप में चित्रित करने के लिए राम का कद कहीं भी, छोटा नहीं किया है। बहरहाल औपन्यासिक कला की दृष्टि से जिसे पौराणिक उपन्यास कह सकते हैं ऐसा पहला उपन्यास हमें प्रेमचनोन्दोत्तर काल में सन् 1955 'वयं रक्षामः' के रूप में प्राप्त होता है। उसके बाद लगभग सभी दशकों में हमें पौराणिक उपन्यास उपलब्ध होते हैं। इनमें यह भी देखा गया है कि पौराणिक कथा-वृत्तों पर आधारित होने के बावजूद ये उपन्यास अपनी समय-चेतना से असंपृक्त नहीं है।

हमारा शोध-विषय चूंकि 'पौराणिक उपन्यासों' से सम्बद्ध है, अतः द्वितीय अध्याय में पौराणिक उपन्यास विषयक सैद्धान्तिक चर्चा

की गई है। इसी क्रम में पौराणिक उपन्यासों को ऐतिहासिक उपन्यासों से अलगाने के उद्देश्य से 'इतिहास' और 'पुराण' के बीच की विभाजक रेखा को स्पष्ट किया गया है। यहां पौराणिक उपन्यास को परिभाषित करते हुए उसकी विभावना को रेखांकित किया गया है ताकि भविष्य में किसी पौराणिक उपन्यास को ऐतिहासिक उपन्यास की संज्ञा न दी जाय। यह इसलिए भी होता रहा है कि हमारे बहुत से उपन्यासकार और विद्वान पौराणिक घटनाओं को भी इतिहास ही समझते-समझाते रहे हैं। उनके लिए प्राचीनता मात्र इतिहास है, परंतु ऐसा नहीं है। जो अति प्राचीन है, जिसकी कथाएं तो हमें मिलती है, परंतु जिनका व्यवस्थित तिथिक्रम हमारे पास नहीं है, उसकी गणना 'पुराण' में होगी। स्मरण रहे 'इतिहास' और 'पुराण' दोनों की विभावनाएं अलग-अलग हैं। अतीत-धर्मी होने के बावजूद दोनों में अंतर है। 'पुराण' काव्य के निकट है, इतिहास शास्त्र और विज्ञान के। प्रस्तुत अध्याय में सोदाहरण उसका विवेचन हुआ है।

तृतीय एवं चतुर्थ अध्याय में लगभग पचीस जितने पौराणिक उपन्यासों का विश्लेषण, पौराणिक उपन्यास के लिए आवश्यक समझे गये बिन्दुओं को केन्द्र में रखते हुए करने का प्रयत्न हुआ है। जिस तरह वृन्दावनलाल वर्मा, जैनेन्द्र, रेणु, श्रीलाल शुक्ल इत्यादि क्रमशः ऐतिहासिक, मनोवैज्ञानिक, आंचलिक और व्यंग्यात्मक उपन्यासों के लिए जाने जाते हैं; ठीक उसी प्रकार डॉ. नरेन्द्र कोहली ने इधर पौराणिक उपन्यासों के क्षेत्र में अपनी विशिष्ठ पहचान बनाई है। सन् 1971-72 में एक विशिष्ट ऐतिहासिक घटना घटित होती है – बांग्लादेश का निर्माण। इसके पूर्व वह 'पूर्व-पाकिस्तान' था। परंतु शेख मुजिबर रहमान के नेतृत्व में वहां के बुद्धिजीवियों ने एक आंदोलन चलाया, अपनी अस्मिता के लिए, अपनी स्वतंत्रता के लिए, 'पश्चिम-पाकिस्तान की राक्षसी गिरफ्त से मुक्त होने के लिए, और वहां की उन मुक्ति-वाहिनियों को ससैनिक सहायता पहुंचायी भारत की तत्कालीन प्रधानमंत्री लौह-संकल्पिनी स्वनामधन्य श्रीमती इन्दिरा गांधी ने, जिसे हम बांग्लादेश के युद्ध के रूप में जानते हैं। इस युद्ध के कारण 'बांग्लादेश' का जन्म हुआ। बांग्लादेश का यह युद्ध अनेक

मायनों में रामायणकाल के राम-रावण युद्ध के समकक्ष बैठता है। यह भी दो संस्कृतियों का युद्ध था। पहली बार भारत की सेनाएं विदेश में प्रविष्ट हुई थीं। वहां के लोगों को राक्षसी पंजों से मुक्त कराने के उपरान्त सत्ता के सूत्र उनको ही थमा दिए गए थे। जैसे राम ने किया था। सत्ता के सूत्र विभीषण को सौंप दिए थे। अंत इस 'थीम' को लेकर डॉ. नरेन्द्र कोहली एक उपन्यास लिखते हैं—'दीक्षा'—सन् 1975 में। हिन्दी उपन्यास-जगत में इसका स्वागत होता है, अतः उसकी अभूतपूर्व सफ़लता से प्रेरित होकर डॉ. कोहली, वाल्मीकि-रामायण की कथा के आधार पर अन्य तीन उपन्यास लिखते हैं— 'अवसर', 'संघर्ष की ओर' और 'युद्ध'। इसे हम रामायण-शृंखला के उपन्यास कह सकते हैं। ये चारों उपन्यास अब 'अभ्युदय-खण्ड-1' और 'अभ्युदय खण्ड-2' में संकलित हैं।

उक्त चार उपन्यासों के पश्चात् डॉ. कोहली ने 'कृष्ण-सुदामा' की मैत्री के 'थीम' पर 'अभिज्ञान' उपन्यास लिखा जिसमें सुदामा की दरिद्रता के ब्याज से उन्होंने तत्कालीन शिक्षा-पद्धति और विद्यापीठों के वातावरण को चित्रित करते हुए हमारे साम्प्रतिक विश्वविद्यालयीन परिवेश में व्याप्त राजनीति और भ्रष्टाचार का पर्दाफ़ाश किया है। उसके उपरान्त उन्होंने महाभारत के वस्तु को लेकर आठ बृहदकाय उपन्यासों की सृष्टि की—'बंधन', 'अधिकार', 'कर्म', 'धर्म', 'अंतराल', 'प्रच्छन्न', 'प्रत्यक्ष' और 'निर्बन्ध'—इन्हें 'महासमर भाग-1 से 8' भी कहा जाता है। तृतीय अध्याय में हमने डॉ. कोहली के इन पौराणिक उपन्यासों का विश्लेष्ण प्रस्तुत किया है। अध्याय के पूर्व बहुत संक्षेप में उनके 'दीक्षा' पूर्व के उपन्यासों का भी ब्यौरा दिया गया है।

चतुर्थ अध्याय में डॉ. कोहली के उक्त उपन्यासों के बाद के अन्य विभिन्न लेखकों के अलग-अलग पौराणिक उपन्यासों का विश्लेषण प्रस्तुत हुआ है। इन उपन्यासों में 'अनामदास का पोथा' (आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी), 'वयं रक्षामः' (आचार्य चतुरसेन शास्त्री), 'अपने अपने राम' (डॉ. भगवानसिंह); 'प्रथम पुरुष', 'पुरुषोत्तम', 'पवनपुत्र' (डॉ. भगवतीशरण मिश्र); 'अभिज्ञान' (डॉ. नरेन्द्र कोहली),

'सूतो वा सूतपुत्रो वा' (डॉ. बच्चनसिंह), 'संभवामि' (सन्हैयालाल ओझा), 'एकदानैमिषारण्ये' (अमृतलाल नागर) आदि पौराणिक उपन्यासों के अतिरिक्त मनु शर्मा के कुछ उपन्यास हैं, जैसे 'द्रौपदी की आत्मकथा', 'द्रोण की आत्मकथा', 'कर्ण की आत्मकथा' तथा 'कृष्ण की आत्मकथा' (पाँच भाग)।

डॉ. कोहली के उपन्यास 'अभिज्ञान' को प्रस्तुत अध्याय में इसलिए लिया गया है कि तृतीय अध्याय में हमने उनके केवल रामायण और महाभारत पर आधृत उपन्यासों को लिया था। 'अभिज्ञान' श्रीमद् भागवतपुराण पर आधृत है।

'अनामदास का पोथा' उपनिषदकाल पर आधारित है। 'छांदोग्यपनिषद' की शूद्र कन्या जाबाला पोथे में राजकन्या के रूप में चित्रित हुई है। कथा के बहाने यहां द्विवेदीजी ने औपनिषदकालीन समाज की सभ्यता और संस्कृति का चित्रण किया है। द्विवेदीजी के अन्य उपन्यास जहां ऐतिहासिक पृष्ठभूमि वाले हैं, वहां प्रस्तुत उपन्यास पौराणिक कथा को लेकर चला है।

उक्त उपन्यासों में 'वयं रक्षामः', 'अपने अपने राम', 'पवनपुत्र' आदि उपन्यास रामायण पर आधृत हैं। 'प्रथम पुरुष' की कथा श्रीमद भागवत की कथा पर आधृत है। हालांकि डॉ. मिश्र ने इसके अतिरिक्त कुछेक पुराणों का भी हवाला दिया है। 'पुरुषोत्तम' के कृष्ण महाभारत के कृष्ण ही हैं। 'संभवामि' में प्रागैतिहासिक काल से लेकर आधुनिक काल तक की घटनाओं को संजोया गया है तो 'एकदानैमिषारण्ये' में प्रागैतिहासिक काल से लेकर जनपदों के ऐतिहासिक काल तक को समाविष्ट किया गया है, अतः उनको पूर्णरूपेण पौराणिक उपन्यास न कहते हुए पौराणिक-ऐतिहासिक उपन्यास की संज्ञा दे सकते हैं।

पंचम् अध्याय का प्रतिपाद्य है—'पौराणिक उपन्यासों में निरूपित मिथक-कथाओं और चमत्कारों की व्याख्या' – अतः यहां पर पौराणिक उपन्यासों में जिन मिथक-कथाओं को लिया गया है उनको तीन शीर्षकों के अंतर्गत रखा गया है—(क) रामायण की मिथक कथाएं, (ख) महाभारत की मिथक कथाएं और (ग़) इतर मिथक

कथाएं। रामायण की मिथक कथाओं में पुत्रेष्टि-यज्ञ, अश्वमेघ-यज्ञ, विविध वर्णों की उत्पत्ति से सम्बद्ध मिथक, अहल्या-उद्धार का मिथक, शिव-धनुष-भंग, देवताओं से संलग्नित मिथक, 'राक्षस' शब्द से जुड़ा हुआ मिथक, रामायण-कालीन दाक्षिणात्य आदिवासी जातियों से संलग्नित मिथक, अगस्त्य-विषयक मिथक, कुंभकर्ण की निद्रा से संलग्नित मिथक, शूर्पणखा से जुड़ा हुआ मिथक, सीता-जन्म-विषयक मिथक, सीता की अग्नि-परीक्षा वाली घटना से जुड़ा हुआ मिथक तथा रावण-वध की घटना से जुड़ा हुआ मिथक आदि-आदि मिथक-कथाओं की व्याख्या पौराणिक उपन्यासों के साक्ष्य पर करने की चेष्टा हुई है।

तदुपरांत महाभारतकालीन मिथक कथाओं में मंत्रों से पुत्रात्पत्ति-विषयक मिथक, काल या युग विषयक मिथ, कुछ व्यक्तिवाची संज्ञाओं से जुड़ा हुआ मिथ, द्रौपदी के जन्म से जुड़ी हुई मिथक कथा, द्रौपदी के बहुपतित्व से जुड़ी मिथक कथा, द्रौपदी चीरहरण से संलग्नित मिथ, द्रौपदी के अक्षयपात्र से संलग्नित मिथ, हनुमान-भीम-संवाद मिथक कथा आदि-आदि मिथक-कथाओं की व्याख्या पौराणिक उपन्यासों के आधार पर ही समेकित की गई है।

इनके अतिरिक्त कुछ अन्य मिथक-कथाओं का निरूपण भी 'अनामदास का पोथा', 'प्रथम पुरुष', 'पुरुषोत्तम', 'अभिशप्त कथा' (मनु शर्मा) आदि उपन्यासों के संदर्भ में किया गया है। अध्याय के प्रारंभ में 'मिथक' विषयक परिभाषा और विभावना को स्पष्ट करने का उपक्रम हुआ है।

यद्यपि मिथक-भेदन प्रक्रिया से ही चमत्कारों का निरसन तो हो जाता है, तथापि पंचम् अध्याय के अंत में अलग से भी कुछ चमत्कारों के रहस्य का उद्घाटन किया गया है।

षष्ठ अध्याय पौराणिक उपन्यासों के परिवेश पर है, अतः उसमें पौराणिक उपन्यासों में निरूपित देश और काल की सम्यक् व्याख्या के उपरान्त तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था, अर्थ-व्यवस्था, सांस्कृतिक परिवेश और उससे जुड़े नानाविध आयामों का विश्लेषण करने की भरसक कोशिश की गई है। इसमें वर्ण-व्यवस्था, आश्रम-

व्यवस्था, तत्कालीन समाज में प्रचलित विवाहों के प्रकार। पितृमूलक समाज-व्यवस्था के कारण पुत्रोत्पत्ति का महत्व, फ़लतः पुत्र-प्राप्ति-हेतु नियोग-विधि की व्यवस्था, बहुपत्नीत्व, बहुपतित्व, पुत्रों की विभिन्न कोटियां, यज्ञों के प्रकार, तत्कालीन समाज में प्रचलित विभिन्न संस्कृतियां, युद्धों के प्रकार, शस्त्रास्त्रों के प्रकार, युद्ध के नीति-नियम भाषा इत्यादि परिवेश के नाना आयामों की सोदाहरण चर्चा की गई है।

सम्पूर्ण शोध-प्रबंध को एक निश्चित शोध-प्रविधि के तहत सुनियोजित करने का यत्न हुआ है। प्रत्येक अध्याय के प्रारंभ में 'प्रास्ताविक' के अंतर्गत उस अध्याय में आनेवाले मुद्दों और शीर्षकों का उल्लेख किया गया है। अध्याय के अंत में समग्रावलोकन की प्रक्रिया द्वार उस-उस अध्याय के चर्चित मुद्दों के अधार पर निष्कर्ष प्रस्तुत किए हैं। शोध-प्रबंध के अंत में छः परिशिष्टों के अंतर्गत 'संदर्भ-ग्रन्थानुक्रमणिका' को अकारादि-क्रम से रखा गया है।

इस शोध-प्रबंध में हमारी प्रमुख स्थापनाएं या निष्कर्ष इस प्रकार हैं—

(1) अन्य औपन्यासिक विधाओं की तुलना में पौराणिक उपन्यास—अच्छे, स्तरीय, साहित्यिक गुणवत्तायुक्त—परिमाणतः कम लिखे गए हैं और उन पर आलोचकों की कृपादृष्टि भी कम ही रही है। कई औपन्यासिक आलोचक ऐतिहासिक उपन्यास और पौराणिक उपन्यास के बीच भेद नहीं कर पाए हैं, फ़लतः बहुत-से पौराणिक उपन्यासों को 'अन्य उपन्यास' के खाते में डाल दिया गया है। 'दीक्षा', ;वयं रक्षामः' 'अवसर' आदि इसके उदाहरण है।

(2) पौराणिक उपन्यासों में भी अभी बहुत सारा क्षेत्र अनाकलित पड़ा है। हमारा पौराणिक साहित्य इतना विपुल, विस्तृत और संपन्न है कि उपन्यासकारों के सम्मुख भी एक चुनौती है। रामायण और महाभारत के अतिरिक्त भी विपुल साहित्य-सामग्री है।

(3) पौराणिक मिथकों पर रचे गये काव्यों का तो हिन्दी के आलोचना-क्षेत्र में काफ़ी स्वागत हुआ है। 'अंधायुग', 'संशय की एक

रात', 'आत्मजयी', 'शम्बूक' आदि इसके उदाहरण है; परंतु उपन्यास के क्षेत्र में पौराणिक उपन्यासों की उपेक्षा हुई है। उन पर जितना खुलकर लिखना चाहिए, नहीं लिखा गया है। 'वयं रक्षामः' जैसे उपन्यास पर बहुत कम लिखा गया है और जो लिखा गया है, वह भी सरसरी निगाह से लिखा गया है। शायद इसका एक कारण यह भी हो सकता है कि उपन्यास यथार्थ की विधा है और ऐसे उपन्यासों पर लिखने से 'पुरातनता' का कहीं लेबल न लग जाय उसकी चिन्ता भी आलोचकों में रही हो। परंतु प्राचीनता के वातायन से आधुनिकता को देखा जा सक्ता है, और भलीभांति देखा जा सकता है यह आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, आचार्य चतुरसेन शास्त्री, सन्हैयालाल ओझा, डॉ. बच्चनसिंह, डॉ. भगवानसिंह, डॉ. नरेन्द्र कोहली आदि ने प्रमाणित कर दिया है।

(4) आधुनिककाल के, विशेषतः उत्तर-आधुनिककाल के दो प्रमुख विमर्श है – दलित विमर्श और नारी-विमर्श- और इन दोनों विमर्शों पर डॉ. नरेन्द्र कोहली, डॉ. भगवानसिंह, डॉ. बच्चनसिंह आदि ने पर्याप्त प्रकाश डाला है; बल्कि कहना यों चाहिए कि इन दोनों वर्गों पर जो निर्योग्यताएं (Disabilities) धर्म और शास्त्र के नाम पर थोपी गयीं, इनकी जड़ों की तलाश करनी हो तो पौराणिक उपन्यासों के तईं पर्याप्त सामग्री है। अतः इन उपन्यासों का अध्ययन इन-इन दृष्टियों से भी होना चाहिए।

(5) संस्कृति-विषयक व्यापक दृष्टिकोण को विकसित करने के लिए भी इन उपन्यासों को खंगालना जरूरी है। केवल अपनी महत्ता के गौरव-गान के बदले हम कहां चूक गये, हमारे किन दोषों और अवगुणों के कारण हमारा देश पराधीन हुआ, इनके कारणों की तलाश भी यहां होती है।

(6) नृवंश-शास्त्र (Anthropology) तथा पुरातत्व-विद्या (Archaeology) और भारत के प्राचीन इतिहास के लिए आचार्य चतुरसेन शास्त्री के उपन्यास 'वयं रक्षामः' को आद्यन्त देख जाना बहुत जरूरी है, हालांकि उसकी अति-समृद्ध संदर्भ-संपन्नता के कारण वह थोड़ा दुरुह अपठनीय-सा हो गया है और विशिष्ट प्रकार के पाठक-

वर्ग की और अपेक्षा रखता है, जैसे सलमान रश्दी के उपन्यास 'सैतानिक वर्सिस' को सामान्य पाठक नहीं पढ़ सकता, कुछ वैसी ही स्थिति यहां पर है। यहां एक बुनियादी सवाल टकराता है, टकराना चाहिए भी, कि यदि हमें साहित्येतर विषयों को पढ़ना होगा तो हम सीधे उन-उन विषयों के अधिकारी विद्वानों के पास जायेंगे, उसके लिए हम साहित्य क्यों पढ़ें? तो उत्तर यह है कि जो कार्य काव्य या साहित्य कर सकता है वह कार्य ये शास्त्रकार नहीं कर सकते। क्या रामायण और महाभारत की जितनी कथाएं, अनपढों और अशिक्षितों को मालूम है, उतनी कथाएं दूसरे ऐतिहासिक-नायकों को मालूम है? काव्य और साहित्य सीधे लोगों के मर्मस्थल को छूता है। दूसरे एक तथ्य यह भी है कि पौराणिक उपन्यास लिखना कोई आसान काम नहीं है। उसके लिए काफी सामग्री से गुजरना पड़ता है। आचार्य चतुरसेन शास्त्री, आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, सन्हैयालाल ओझा, अमृतलाल नागर, डॉ. नरेन्द्र कोहली आदि पौराणिक उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों को लिखने के पूर्व काफी शोध-कार्य किया है, अतः उनका एतद्विषयक ज्ञान किसी शास्त्रकार से कम नहीं है।

(7) डॉ. नरेन्द्र कोहली ने अपने रामायण-श्रृंखला के उपन्यासों में 'राक्षस' को एक जाति-विशेष न मानकर, प्रवृति-विशेष माना है; जबकि दूसरी ओर आचार्य चतुरसेन शास्त्री ने 'राक्षस' को एक जाति-विशेष ही माना है। उन्होंने उस काल के अध्ययन के द्वारा यह प्रमाणित किया है कि 'राक्षस' एक जाति होती थी, जैसे देव, दानव, दैत्य, नाग, वानर, गरुड ये सब जातियां थीं। राम आर्य-संस्कृति के प्रस्तोता थे तो रावण राक्षस-संस्कृति को अग्रसरित करता था। इस तरह देखा जाए तो शास्त्रीजी की दृष्टि अधिक ऐतिहासिक वा वैज्ञानिक लगती है।

(8) डॉ. कोहली का उर्मिला-विषयक विधान भी गलग लगता है। वह कहते हैं कि समूची (वाल्मीकि-रामायण) में मुझे उर्मिला कहीं नहीं दिखी (द्रष्टव्य – नरेन्द्र कोहली ने कहा : पृ. 41), जबकि वाल्मीकि-रामायण में लक्ष्मण-उर्मिला के विवाह की बात है। यदि

ऐसा न होता तो गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टागोर 'प्राचीना' के 'काव्येर उपेक्षिता' में उर्मिला का उल्लेख न करते।

(9) पौराणिक उपन्यासों और ऐतिहासिक उपन्यासों में अंतर करना होगा। पौराणिक उपन्यास और पौराणिक गद्य-आख्यानों में भी अंतर करना होगा। स्मरण रहे, पौराणिक उपन्यास भी होता तो उपन्यास ही है। अतः उसे उपन्यास की शर्तों पर खरा उतरना होगा। उपन्यास यथार्थ की विधा है। यथार्थधर्मिता ही उसका प्राण-तत्व है। अतः पौराणिक उपन्यासों को पौराणिक वृतान्त भी यथार्थ – अलबत्त तब के यथार्थ – के धरातल पर रखना होगा। उसे वास्तविक व विश्वसनीय बनाना होगा। पुराणों के जो 'Larger than imagination' वाले चरित्र हैं उनको वह 'Larger than life' तो चित्रित कर सकता है, पर अलौकिक और अपार्थिव नहीं। उनके कार्य भी पौरुषेय की सीमा में आने चाहिए उसके लिए उसे मिथक-कथाओं की आधुनिक तर्क-संगत व्याख्या करनी होगी, जैसा की प्रायः उपन्यासकारों ने किया है। अन्यथा उनका उपन्यास, उपन्यास न रखकर, गद्य में लिखा पौराणिक आख्यान-मात्र रह जायेगा। डॉ. कोहली के पौराणिक उपन्यास, 'वयं रक्षामः', 'अपने अपेन राम', 'सूतो वा सूतपुत्रो वा' आदि उपन्यास इस कसौटी पर खरे उतरते हैं।

(10) जिस प्रकार सामाजिक, समाजवादी, ऐतिहासिक, आंचलिक, मनोवैज्ञानिक आदि उपन्यासों में मानवीय समस्याओं का आकलन रहता है; ठीक उसी प्रकार पौराणिक उपन्यासकारों ने भी तत्कालीन समस्याओं को तो लिया ही है, कहीं-कहीं उन समस्याओं को इस तरह चित्रित किया है कि हमारे वर्तमान की समस्याएं भी उनमें कहीं-न-कहीं प्रतिविम्बित हुई हैं।

(11) पौराणिक उपन्यासकारों ने पौराणिक पात्रों के देवत्व का आवरण हटाकर उनको भी मानवीय धरातल पर ही प्रस्तुत किया है। शिव, ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, वरुण, अग्नि आदि देव यहां मनुष्य-रूप में ही मानवीय सबलताओं-निर्बलताओं के साथ चित्रित हुए हैं।

अतः अपने इस शोध-कार्य को यथासंभव उपादेय बनाने का यत्न मैंने किया है। हिन्दी की औपन्यासिक आलोचना में इससे

किंचित भी वृद्धि हुई तो मैं अपने श्रम को सार्थक समझूंगी। इससे हिन्दी की औपन्यासिक आलोचना की एक कमी की कुछ पूर्तता हुई है, ऐसा मुझे प्रतीत होता है। यह इस दिशा में मेरा एक नम्र प्रयास है।

पौराणिक उपन्यासों के क्षेत्र में शोद्ध-कार्य के लिए अभी काफी गुंजाइश है। केवल रामायण पर आधारित उपन्यासों को लेकर कार्य हो सकता है, उसी तरह केवल महाभारत पर आधृत उपन्यासों को लेकर भी कार्य हो सकता है। पौराणिक उपन्यासों की भाषाशैली और शिल्प को लेकर या उसकी भाषिक संरचना को लेकर शोध-कार्य हो सकता है। इन उपन्यासों का समाजशास्त्रीय या मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों के आधार पर भी अध्ययन संभव है।

अंत में समकालीन कवि बद्रीनारायण की 'विश्वकर्मा पूजा' पर लिखी मिथकीय, ऐतिहासिक और समकालीन संदर्भों से युक्त निम्नलिखित काव्य-पंक्तियों को उद्धृत करने का मोह नहीं रोक पा रही हूं। यथा –

"लोहा जिसकी स्तुति में रचे गए हैं कई श्लोक
उसीसे सुदर्शन चक्र बना था जिससे मारा गया था विंध्य पर्वत में सुदाम
सुना है कि सुदाम
सम्पूर्ण आर्यावर्त में लोहे का सबसे अच्छा कारीगर था
और यह हत्या पूरी सभ्यता में
लोहे से की गई पहली हत्या थी
इसीसे मारा गया था उनका लोहासुर...
इसीसे वह तलवार बनी थी
जिससे शम्बूक का सर कटा था।
('समकालीनता और साहित्य' से उद्धृत)

* * *